PUNE RESEARCH WORLD ISSN 2455-359X
AN INTERNATIONAL JOURNAL OF INTERDISCIPLINARY STUDIES VOL 7, ISSUE 1

कामकाजी महिलाएँ – कामकाजी क्यों ?

डॉ. ठक्कर हर्षदकुमार आर.
असिस्टंट प्रोफेसर
समाजशास्त्र विभाग
सी यु शाह आर्टस् कॉलेज
अहमदाबाद **गुजरात भारत**

प्रस्तावना,

हमने वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक नारी के बदलते रूप को देखा है । कानून की द्रष्टि से भारतीय नारी को पुरुष की भाँति जीवन के विविध क्षेत्रों में समान अवसर प्राप्त हुए हैं, परंतु आज भी परिवार और समाज में नारी की स्थिति में ज्यादा सुधार नहीं हुआ है । इसका कारण स्त्री पुरुष पर अवलंबित है । आम स्त्री पुरुषों के बराबर श्रम करने पर भी उसका श्रम कहीं दिखाई नहीं देता है । उसे पति के कार्य में पत्नी द्वारा हाथ बँटा दिये जाने की संज्ञा दी जाती है । कृषकों एवं कुटीर उद्योग चलाने वाले पुरुषों की पत्नियाँ अपने पति के साथ काम करती हैं । उन्हीं की भाँति रस्सी बँटाना, टोकरियाँ बुनना आदि काम करती हैं । "आँकड़ों में पता चलता है कि विश्व की कुल जनसंख्या का आधा भाग होते हुए भी महिलाएँ कुल कार्य घंटों का दो-तिहाई भाग स्वयं करती हैं । बदले में उन्हें आय का मात्र दसवाँ हिस्सा भुगतान के रूप में दिया जाता है ।" इसके अतिरिक्त स्त्रियों के ग्रार्हस्थिक कार्यों को उत्पादक

नहीं माना जाता । इसलिए सुबह से रात तक चूल्हे-चौके की परिधि में घूमना स्त्री का सारा श्रम अनुत्पादक बनकर रह जाता है । "परिणामतः जनगणना के समय उनकी गणना दूसरों के आश्रय में रहकर अपना पेट पालने वाले बेकारों और आश्रितों के वर्ग में की जाती है ।"

स्त्री पराधीनता का मुख्य कारण है - उसकी आर्थिक विवशता । वह घर की चार दीवारी में बंदी रहकर गृहकार्य करती है । पुरुष धनोपार्जन करता है । "आर्थिक विवशता एवं निर्भरता, भविष्य की असुरक्षा एवं सामाजिक तिरस्कार के भय से स्त्री समाज द्वारा निर्मित कारागार में कैद हो गई ।"

स्वतंत्रता के पश्चात् समाज में स्त्री की स्थिति में सुधार हुआ है, किंतु यह परिवर्तन पूर्ण नहीं है । आज भी हमारे समाज में अनेक कुप्रथाएँ, अंधश्रद्धाएँ, जिन्हें समाप्त किये बिना स्त्री को न्याय नहीं मिलेगा । बढ़ती हुई शिक्षा के कारण स्त्री आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने लगी ।

पहले पुरुष स्त्री के पारिवारिक श्रम को महत्व देता था । परिणास्वरूप 'स्त्रियाँ काफी दबदबे के साथ घर पर शासन करती थीं ।' परन्तु आज पुरुष-स्त्री की दोनों भूमिकाओं को महत्व देने लगा है । आज स्त्री ने अपनी भूमिका एवं क्षमता से समाज के प्रत्येक क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य करके यह दिखाया है कि वे पुरुष से समानता में कम नहीं है । आज उसके लिए धनोपार्जन के कई मार्ग खुले हैं । इसका अभिप्राय यह नहीं कि उसका ग्रार्हस्थिक श्रम मूल्यहीन हो गया है । वह ग्रार्हस्थिक कार्य के अतिरिक्त, पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास में भागीदार बन गई है । घर की व्यवस्था दफ्तर का ही रूप है । इसलिए सरकार को उसके ग्रार्हस्थिक कार्यो को उत्पादक श्रम के रूप में स्वीकृति देनी होगी, तब ही स्त्री की स्थिति में अपेक्षित सुधार होगा ।

बदलता समाज, बदलती नारीः

प्राचीन काल से नारी की स्थिति में भिन्न-भिन्न विचार पाये जाते हैं । वैदिक युग में वह स्वंतत्र थी एवं समाज में उसके लिए उच्च स्थान था । ऐसा माना जाता है कि मुसलमान शासकों के आगमन के बाद नारी स्वतंत्रता पर अंकुश लग गए । पाणिनी और कौटिल्य दोनों के लोखों में सामान्य परिवार की नारियों के एकांतवास का वर्णन मिलता है । पहली शताब्दी प्रारंभ होने के ठीक पहले मनु के लेखों में भी इस स्थिति का वर्णन मिलता है । इस काल में नारी शिक्षा पर रोक लगा दी गई । शिक्षा एवं शास्त्र ज्ञान से वंचित नारी कोई भी निर्णय लेने में असमर्थ रही एवं पुरुष पर निर्भर भी रही है ।

आज समाज बदला है, नारी भी बदली है । समाज का नारी के प्रति द्रष्टिकोण बदल गया है । आधुनिक नारी परंपरागत दासता को तोड़कर वैयक्तिक एवं सामाजिक विकास में अपनी सार्थकता स्थापित करने का प्रयास कर रही है । अस्मिता के प्रति पहले से अधिक सतर्क रखती है । प्रकृति ने पुरुष एवं नारी को शारीरिक एवं भावात्मक द्रष्टि से चाहे भिन्न अस्मिता प्रदान की है, किंतु इस आधार पर समानता एवं क्षमता, न्याय एवं अवसर संबंधी पूर्वाग्रहों का आरोपण निरर्थक है ।

आज की नारी सुशिक्षित है । पुरुष के समान घर से बाहर जाकर अर्थोपार्जन कर रही है । प्रश्न यह उठ खड़ा होता है कि बीसवीं शताब्दी के पूर्वादर्ध में नौकरी के प्रति उनमें आकर्षण क्यों नहीं था ? इसका उत्तर यह है कि उस समय स्त्रियाँ अशिक्षित थीं, उनके लिए पुरुष के समान नौकरी के अवसर उपलब्ध नहीं थे । दफ्तरों में पुरुष सहकर्मियों के साथ बैठकर काम करना अपमानजनक माना जाता था । अध्यापिका, नर्स, डोक्टर यही व्यवसाय नारियों के लिए योग्य समझते थे । नारियों के लिए अर्थोपार्जन करना परिवार की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझते थे । बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक कालों में कामकाजी के रूप में केवल निम्नवर्ग की नारियाँ, परित्यक्ताएं एवं विधवाएँ ही द्रष्टिगोचर होती हैं । बीसवीं सदी के उत्तरादर्ध में अधिक कामकाजी नारियाँ दिखाई देती है ।

धीरे-धीरे समाज बदलता गया । सन् 1923 में स्त्रियों को कानूनी व्यवसाय अपना लेने की अनुमति मिल गई थी, परंतु वह न्यायाधीश का पद ग्रहण नहीं कर सकती थी । "सन् 1935 में भारत सरकार द्वारा पारित कानून में नारी के लिए प्रतिबंधित नौकरियों का उल्लेख कर दिया था कि नारी प्रशासकीय सेवा, भारतीय पुलिस सेवा, भारतीय वन सेवा, भारतीय रेल व उड्डयन सेवा, भारतीय राजस्व सेवा व भारतीय न्याय सेवा में प्रवेश नहीं कर सकती ।" इस प्रतिबंध के पीछे तीन मान्यताएँ स्पष्टतः द्रष्टिगत होती हैं कि -

1. नारी शारीरिक द्रष्टि से पुरुष से दुर्बल है, अतः वह प्रशासन, पुलिस, वन तथा विमान चालन जैसे पुरुषोचित कार्य सफलतापूर्वक नहीं कर सकती ।
2. बौद्धिक द्रष्टि से नारी पुरुष के समकक्ष नहीं है, अतः आँकड़ों का लेखा-जोखा वह पुरुष के समान नहीं रख सकती ।
3. वह अधिक भावुक होने के कारण किसी स्थिति का तटस्थ विश्लेषण करके स्वतंत्र निर्णय नहीं ले सकती ।

सन् 1940 में भारतीय न्यायसेवा के अतिरिक्त अन्य सभी सेवाओं से यह प्रतिबंध हटा लिया गया । बाद में इतना होते हुए भी कुछ प्रश्न उपस्थित होते थे । तब न्याय सेवामें भी स्त्री को सम्मिलित किया गया । जैसे कि परिवार की आर्थिक आवश्यकताएं पूरी करने के लिए नारी नौकरी करने लगी ? या उनकी बढ़ती शिक्षा व जागृति से स्वावलंबी बनने की इच्छा से ? निसंदेह इनमें से किसी एक कारण पर हम उँगली उठा नहीं सकते । कुछ नारियाँ परिवार की मूलभूत आर्थिक आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए अर्थार्जन करने लगी तो कुछ नारियाँ परिवार की आर्थिक परिस्थिति मजबूत करने के लिए, कुछ नारियाँ समाज में अपना महत्व स्थापित करने के लिए अथवा खाली समय व्यतीत करने के लिए ।

कामकाजी के कारणः

वर्ग भेद को छोड़कर नारियों द्वारा कामकाज करने के लिए प्रमुख तीन कारण दिखाई देते हैं -

1. आर्थिक दबाव ।
2. शिक्षा, क्षमता एवं योग्यता का सदुपयोग ।
3. विकसित सामाजिक द्रष्टिकोण ।

1. आर्थिक दबाव:

कोई भी व्यक्ति अर्थार्जन के लिए ही नौकरी करता है । वह नारी हो या पुरुष अधिकांशतः नारियाँ आर्थिक दबाव के कारण पुरुष के समान अपने आश्रितों के भरण पोष की व्यवस्था के लिए घर से बाहर निकल कर अर्थार्जन करती हैं । काम के लिए घर के बाहर जाना या केवल गृहकार्य करना, उनकी इच्छा पर निर्भर नहीं रहता । कार्य के लिए बाहर जाना उनकी विवशता है । बढ़ती महंगाई के कारण परिवार के मुखिया द्वारा परिवार की मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी करने में असमर्थ रहने के कारण कुछ नारियों को नौकरी करनी पड़ती है । इसमें निम्नवर्ग की नारियाँ आती हैं । कुछ सुशिक्षित नारियाँ आर्थिक स्वतंत्रता अर्जित करने के लिए नौकरी करती हैं । इसके अंतर्गत उच्चवर्गीय नारियाँ आती हैं । अतः परिवार की आय में वृद्धि करने के लिए तथा जीवन स्तर को सुधारने के लिए तथा जीवन स्तर को सुधारने के लिए ज्यादातर नारियाँ नौकरी करती हैं ।

मध्यवर्गीय एवं उच्चवर्गीय नारियों को आधार बनाकर बंगलौर में किये गए सर्वेक्षण से यह निष्कर्ष निकला कि "85 प्रतिशत विवाहित-अविवाहित नारियाँ आर्थिक आवश्यकता न होने पर भी नौकरी करना चाहती हैं ।" प्रमिला कपूर द्वारा किये गए सर्वेक्षणों से यह ज्ञात होता है कि - "नारी विवाहोपरातं तथा आर्थिक द्रष्टि से संपन्न

होते हुए भी नौकरी करना चाहती है । ऐसी नारियों का प्रतिशत 1963 में 35 प्रतिशत था जो 1973 के सर्वेक्षण में बढ़कर 65 प्रतिशत हो गया ।" सन् 1968 मं प्रमिला कपूर ने और एक सर्वेक्षण किया । इस सर्वेक्षण द्वारा यह स्पष्ट होता है कि, "वही मध्यवर्गीय नारियाँ अपने कामकाज से असंतुष्ट हैं, जिन्हें परिवार की मूलभूत आर्थिक आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए नौकरी करनी पड़ती है । ऐसी नारियों का प्रतिशत 7 था 170 प्रतिशत नारियाँ आर्थिक स्वावलंबन के लिए नौकरी कर रही थीं, अतः वे संतुष्ट थीं । शेष 23 प्रतिशत नारियाँ संतोष-असंतोष के बीच दुविधाग्रस्त थीं ।"

यदि नारी आर्थिक द्रष्टि से पूर्णतः पुरुष पर निर्भर रहती है तो सामाजिक, राजनीतिक एवं पारिवारिक क्षेत्र में भी पुरुष पर निर्भर तथा पुरुष से हीन बनी रहेगी । आर्थिक द्रष्टि से आत्मनिर्भर रहने से समनता, स्वतंत्रता एवं अधिकार की प्राप्ति होती है ।

2. शिक्षा, क्षमता एवं योग्यता का सदुपयोगः

सन् 1960 के बाद देश में नारी शिक्षा के क्षेत्र में उन्नति हुई है । सन् 1960 के बाद ही शिक्षित नारियाँ अधिक संख्या में नौकरी करने लगीं । उस समय नारियों के लिए अधिकाधिक संख्या में स्कूल खोले गए और लड़कियों को निःशुल्क शिक्षा एवं छात्र वृत्तियाँ दी गई । परतंत्र भारत में नारी को आदर्श गृहिणी, आदर्श पत्नी एवं आदर्श माँ बनने के लिए अनुकूल शिक्षा दी जाती थी । उनके पाठयक्रम में सीमित अक्षर ज्ञान के साथ पाककला, सिलाई जैसे घरेलू संबंधित विषय थे । सन् 1962 में राष्ट्रीय समिति की अध्यक्षा हंस मेहता ने इस प्रकार के पाठ्यक्रम का विरोध किया । सन् 1964 में कोठारी आयोग ने नारी के गृहस्थी से जुड़े दायित्वों को प्रमुख माना । "अतः आयोग की मान्यता थी पाठ्यक्रम को इस प्रकार निर्धारित किया जाय कि नारी भविष्य में बेहर माँ बनने के साथ-साथ संतान के बेहतर पोषण के लिए नौकरी भी कर सके ।"

परिणाम स्वरूप आज देश में सुशिक्षित नारियों की संख्या बढ़ गई है, परंतु आज भी कुछ परिवारों में लड़कों की भाँति लड़कियों को पढ़ाते नहीं हैं । इसका कारण यह है कि उच्च शिक्षिता लड़की के विवाह में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं । प्रत्येक युवक अपने से कम शिक्षिता पत्नी चाहता है ।

आज नारियों का रुझान डोकटरी, नर्सिंग, अध्यापन जैसे कार्यो की ओर है । नारी की नौकरी के पीछे प्रेरक तत्व है - अपनी शिक्षा, क्षमता एवं योग्यता का सदुपयोग करके समाज में अपनी पहचान कायम रखना । आर्थिक द्रष्टि से संतुष्ट नारियाँ मात्र धनोपार्जन के लिए कार्य नहीं करती हैं । कुछ नारियाँ यह सिद्ध करना चाहती हैं कि नारी भी पुरुष के समान योग्य एवं सक्षम है । साथ ही समाज की स्थापित मान्यता समाप्त करना चाहती है । वह परंपरागत भूमिका के बंधन को तोड़कर घर के बाहर जाकर संतोष एवं नयेपन खोजना चाहती है । पारिवारिक दायित्व को निभाते हुए कार्यशील नारी की भूमिका में पूर्णत्व लाने की कोशिश करती है । इसके अलावा अपने समय का सदुपयोग करने के लिए नौकरी करना चाहती है । नारी नौकरी केवल अर्थ प्राप्ति के लिए ही करती है, ऐसा नहीं है । "आर्थिक तत्व के अलावा अनेक सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तत्व भी नारियों को कार्य के लिए प्रेरित करते हैं ।"

अमेरिका में इस विषय पर हुए सर्वेक्षण के अनुसार 6 प्रतिशत नारियाँ धनोपार्जन हेतु, 15 प्रतिशत घर की चारदीवारी से बाहर निकलने हेतु, 9 प्रतिशत तक कैरियर एवं आत्मविश्वास हेतु तथा 10 प्रतिशत अन्य कारणों से प्रेरित होकर नौकरी करती हैं, अर्थात् बहुमत का प्रेरक तत्त्व आर्थिक ही रहा है ।

3. विकसित सामाजिक द्रष्टिकोणः

उपर्युक्त कारणों के अलावा अधिक महत्वपूर्ण कारण है - समाज का विकसित द्रष्टिकोण । समाज के परिवर्तन के साथ कामकाजी नारी के प्रति द्रष्टिकोण

भी बदल गया है । स्वतंत्रता के पूर्व नारी द्वारा नौकरी करना परिवार के सम्मान के प्रतिकूल समझा जाता था । आज देश की परिस्थितियों में परिवर्तन आ गया है । इस परिवर्तन के साथ सामाजिक चिंतन में पर्याप्त अंतर आया है । अविवाहित नारियों को भी माँ-बाप नौकरी के लिए भेजते हैं । ससुराल पक्ष भी बहु की नौकरी की हामी भरते हैं ।

प्रमिला कपूर के सर्वेक्षण के अनुसार, "86 प्रतिशत नौकरीपेशा नारियों के पतियों को नौकरी पर कोई आपत्ति नहीं है ।" गोल्डस्टीन के सर्वेक्षण के अनुसार '50 प्रतिशत नारियाँ अपने पतियों द्वारा प्रेरित' और कलारानी के सर्वेक्षण से "75 प्रतिशत नारियाँ अपने पतियों द्वारा प्रेरित किये जाने के कारण नौकरी करती हैं ।"

आज नई पीढ़ी ही नहीं है, पुरानी पीढ़ी के द्रष्टिकोण में भी अंतर दिखाई देता है । आज स्थिति बदल गई है । पुत्र के समान पुत्री को भी उच्चशिक्षा के लिए भेजते हैं । उनके भी कैरियर के प्रति माँ-बाप चिंतित होते हैं । आर्थिक लाभ को देखकर ही नारियों की नौकरी के प्रति समाज के द्रष्टिकोण में परिवर्तन आया है । इस परिवर्तन के कारण अधिक नारियाँ नौकरी करने लगी हैं ।

पारिवरिक दायित्वः

आधुनिक कामकाजी नारी पंरपरागत दासता को तोड़ वैयक्तिक एवं सामाजिक विकास में अपनी सार्थकता स्थापित करने का प्रयास कर रही है । नारी को ममता, करुणा, नैतिकता, धैर्य, क्षमता एवं दक्षता की प्रतिमूर्ति बनाकर इतिहास में सदैव छला जाता रहा है । "आदिकाल में ही जैसे जैसे संपत्ति बढ़ती गई वैसे परिवार में नारी की तुलना में पुरुष का स्थान अधिक महत्वपूर्ण होता गया ।" पुरुष प्रधान समाज द्वारा थोपी गई मर्यादा नारी पर लागूकी गई और पुरुष उससे मुक्त रहा । "प्रचान काल से यह मान्यता रही है कि नारी विवाह होने तक पिता के, विवाहोपरांत पति के और वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में जीवन-यापन करती है । वह पुत्री, पत्नी और माँ के

रूप में पुरुष का पिता, पति और पुत्र रूप में साहचर्य प्राप्त करती है, अर्थात् दोनों के बीच में स्नेह, प्रेम तथा सहकार बारीबारी आते हैं ।" नारी के अस्तित्व एवं व्यक्तित्व की कोई पहचान नहीं है । इस क्षेत्र में वह अबला और पराश्रित है । जब कामकाजी नारी पर भी इस प्रकार पूर्वाग्रह हावी हो तो उसकी स्थिति अवश्य शोचनीय बन जायेगी ।

निष्कर्षः

आज की नारी ने सुशिक्षित हो कर समाज में एक निश्चित स्थन और परिवार में अपना एक अलग अस्तित्व एवं अस्मिता बनायी रखी है । उसके चिंतन और बौद्धिक क्षमताओं का विकास हुआ है । वह मात्र घर-परिवार में रहकर संतुष्ट नहीं हो पा रही है । वह अपने व्यक्तित्व की सार्थकता की तलाश में घर से बाहर निकलकर अर्थार्जन कर रही है । वह केवल आर्थिक विवशता से नौकरी नहीं कर रही है, इसके साथ अर्थेतर कारण भी हैं । अपने परिवार के लिए लड़कियाँ पिता की भूमिका और ज्येष्ठ पुत्र की भी भूमिका निभा रही हैं । पति की मृत्यु के बाद या तलाक के बाद किसी के आश्रय में न रहकर अपनी संतान के पालन का दायित्व उसने सहर्ष स्वीकार किया है । वह परिवार का जीवन-स्तर ऊँचा उठाने के लिए और गृहस्थी की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए अपने पति के साथ मिलकर कामकाज की ओर अग्रसर हो रही है । वह दोहरे दायित्वों को अपना कर जटिल स्थिति को झेल रही है । कामकाजी नारी में स्वाभिमान अधिक पाया जाता है । आर्थिक स्वावलंबन अपना कर पारिवारिक दायित्वों एवं संबंधों से वह मुक्त होना नहीं चाहती है । आर्थिक आवश्यकता न होते हुए भी वह अपनी आत्म-सार्थकता की तलाश के लिए अर्जक का कार्य कर रही है । सन् साठ के पूर्व के महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में इस प्रकार की प्रवृत्ति अनुपलब्ध हैं, क्योंकि उस समय के समाजज में नारियाँ आर्थिक विवशता के कारण ही नौकरी करती थीं । यहीं चित्र साठोत्तरी उपन्यासों में प्रतिबिंबित है ।

कुछ नारियाँ अपने परिवार में पिता की भूमिका निभाते हुए अनिच्छा से अविवाहित ही रह चुकी हैं । इसमें अधिकांस माता-पिताओं में लड़कियों से मिलने वाली धनराशि के प्रति लोभ ही मुख्य कारण है । हर्ष की बात यह है कि कामकाजी नारी शिक्षा, जागृति एवं स्वाभिमान के बल पर अन्याय के खिलाफ आवाज उठा रही है । स्वाभिमान के साथ अपने पैरों पर खड़ी होकर, स्वतंत्र रूप से अपना जीवन-निर्वाह कर रही है । वह किसी पर आश्रित रहना नहीं चाहती है ।

आलोच्य उपन्यासों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि विवाहित नारी पति के अत्याचारों से बचने के लिए कोई न कोई मार्ग ढूँढ़ निकाल सकती है ।

संदर्भः

1. भारतीय समाज में कार्यशील महिलाएँ, डो. सुलोचना श्रीहरी देशपांडे, श्रुति पब्लिकेशन, जयपुर ।
2. महिलाओं के प्रति घरेलु हिंसा और कन्या भ्रूणहत्या, प्रकाश नारायण नाटाणी, बुक पब्लिकेशन, जयपुर ।
3. www.googlesearch working womans and devlopment